पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधिकार १
ता. ०५-०७-१९८२
लंदन हॉल में प्रवचन नं. २

यह श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक नामक एक शास्त्र है। यह लगभग दो सौ तीस वर्ष पहले पंडितप्रवर टोडरमलजी साहब ने लिखा है। उसका दूसरा पृष्ठ है। इसमें शुरुआत में अरिहंत का क्या स्वरूप, सिद्ध का, आचार्य, उपाध्याय, साधु का क्या स्वरूप है वह पहले प्रतिपादन करते हैं।

क्योंकि जब तक जीव को सच्चे देव, गुरु और शास्त्र, उनका सच्चा श्रद्धान, ज्ञान नहीं होता तब तक उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का श्रद्धान होता है। वह छोड़कर सच्चे देवादि का श्रद्धान करके जिन अनुभवी पुरुषों ने उन शास्त्रों की रचना की है, जो सर्वज्ञ परमात्मा की परम्परा में आये हुए जो भाव हैं, वे भाव जिन शास्त्रों में लिखे हों और जिनमें वीतराग पोषक वाणी हो, राग पोषक नहीं अपितु वीतराग पोषक वाणी हो वह वाणी वास्तव में जिनेन्द्रभगवान की है वह उसकी परीक्षा का मूल है।

क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हुए, वे वीतराग होने के पश्चात् उनकी दिव्यध्वनि छूटती है। उसमें वीतराग होने का उपदेश होता है। राग करो, पुण्य-पाप करो वह उपदेश उनकी वाणी में होता ही नहीं। परन्तु वीतरागभाव प्रकट करो यही उनकी वाणी में आया है। तो पहले सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का जीव को श्रद्धान करना चाहिये। झूठे देवादि का श्रद्धान छोड़ना चाहिये। इसीलिए प्रथम अरिहंत परमात्मा के स्वरूप का विवेचन है।

अब, यहाँ जिनको नमस्कार किया उनके स्वरूपका चिंतवन करते हैं:- कारण कि स्वरूप जाने बिना यह नहीं समझ में आता कि मैं किसको नमस्कार करता हूँ? णमो अरिहंताणं तो सभी बोलते हैं परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप क्या है वह यदि लक्ष में हो तो उसे वास्तव में वंदन का लाभ मिले। इसलिये **और इसके सिवाय उत्तम फल की प्राप्ति भी कहाँ से हो? वहाँ प्रथम अरिहंत के स्वरूपका विचार करते हैं:- अरिहंत का स्वरूप**, अरिहंत परमात्मा के स्वरूप का वर्णन।

अरहंतोंका स्वरूप

जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार करके, निजस्वभावसाधन द्वारा चार घातिकर्मोंका क्षय करके - अनंतचतुष्टयरूप विराजमान हुए हैं। प्रथम आत्मा सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है, वह गृहस्थ अवस्था में प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् चारित्र की स्टेज आती है। तब वही आत्मा गृहस्थ अवस्था छोड़कर, जंगल में जाकर साधु पद अंगीकार करके, मुनिधर्म अंगीकार करके... साधु अर्थात् जो आत्मा को साधे, जो निरंतर शुद्धात्मा की साधना करे उसे साधु कहने में आता है। साधु राग को नहीं साधते। पाँच महाव्रत के परिणाम को नहीं साधते। पाँच महाव्रत के परिणाम होते अवश्य हैं परन्तु उन्हें नहीं साधते अपितु जो अपने शुद्धात्मा को निरंतर साधते हैं,

जिसमें एकाग्र होकर ध्यान में लीन होते हैं ऐसे साधु अथवा मुनिराज, **मुनिधर्म अंगीकार करके, निजस्वभावसाधन द्वारा**, केवलज्ञान का साधन अपना शुद्धात्मा और उसके आश्रय से उसमें लीन होकर जो शुद्धि की वृद्धि होती है, और अशुद्धि की हानि होती है अर्थात् वीतरागभाव की वृद्धि और राग की हानि ऐसी एक दशा प्रगट होती है। जितनी मात्रा में वीतरागभाव का ग्रहण होता है आत्मा के आश्रय से, उतनी ही मात्रा में पराश्रित राग छूटता जाता है। ऐसा ग्रहणपूर्वक त्याग परमात्मा फरमाते हैं। अकेला कोरा त्याग नहीं परन्तु ग्रहणपूर्वक त्याग। जितनी एकाग्रता बढ़ती जाती है, जितना वीतरागभाव बढ़ता जाता है उतना वीतरागभाव का ग्रहण और उतनी मात्रा में रागादि कषाय का अभाव होता जाता है।

ऐसे **निजस्वभावसाधन द्वारा चार घातिकर्मोंका क्षय करके**, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ऐसे चार प्रकार के सर्वज्ञ भगवान ने कर्म कहे हैं। उन कर्म के दो प्रकार हैं, एक भावकर्म और एक द्रव्यकर्म। भावघातिकर्म उसे कहा जाता है कि जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों का नाश करे उसे भावघाति कर्म कहने में आता है अथवा उसे भावकर्म कहने में आता है। वे जीव के परिणाम हैं। राग-द्वेष और मोह वे जीव के परिणाम उन्हें भावघातिकर्म अर्थात् कार्य कहने में आता है। और निमित्तरूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और मोहनीय वे चार प्रकार के निमित्तरूप घातिकर्म हैं।

जब भावघातिकर्म का अभाव होता है तब निमित्तरूप चार प्रकार के घातिकर्मों का भी अभाव हो जाता है, क्षय होता है। वह **क्षय करके-अनंतचतुष्टयरूप विराजमान हुए हैं।**। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य ऐसी आत्मा की उत्कृष्ट दशा वह प्रगट होती है। **वहाँ अनंतज्ञान द्वारा तो अपने अनंत गुण-पर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्योंको युगपत् विशेषपनेसे प्रत्यक्ष जानते हैं**। ज्ञान का स्वभाव-केवलज्ञान का स्वभाव अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को प्रत्यक्ष जानना और लोकालोक, द्रव्य-गुण-पर्याय, जड़ और चेतन वे भी ज्ञान में प्रत्यक्षपने जानने में आ जाते हैं।

ऐसी कोई अचिन्त्य ज्ञान की-दिव्यज्ञान की सामर्थ्य है कि प्रत्यक्षपने अपना आत्मा और प्रत्यक्षपने लोकालोक एक समयमात्र में इच्छा के बिना ज्ञात हो जाता है, उसका नाम अनंतज्ञान है। **अनंतदर्शन द्वारा उनका सामान्य अवलोकन करते हैं**। सामान्य अवलोकन का नाम दर्शन है। अपने आत्मा को भी देखे और जगत के पदार्थों को भी देखे; परन्तु भेद किये बिना जो देखे उसे सामान्य अवलोकन, दर्शन उपयोग, केवलदर्शन उपयोग कहने में आता है। जैसे केवलज्ञान उपयोग है ऐसे केवलदर्शन उपयोग प्रगट होता है।

अनंतवीर्य द्वारा ऐसी सामर्थ्यको धारण करते हैं। अनंतवीर्य अर्थात् आत्मा का बल। उस आत्मा का ऐसा बल प्रगट होता है कि अनंतज्ञान, अनंतदर्शन और अनंतसुख को एक समयमात्र में भोगते हैं फिर भी जहाँ थकावट नहीं होती उसे अनन्तवीर्य प्रगट हुआ कहने में आता है। वीर्य की हीनता हो तब कषायभाव होता है। और कषायभाव है उसके वेदन में आत्मा को थकावट आती है, थकान लगती है। फिर चाहे कैसी भी पुण्य की क्रिया में जीव रुका हो तो भी ज्यादा समय उसमें टिक नहीं सकता। क्योंकि कषाय की मंदता का वेदन उसमें आत्मा को थकान लगती है। और जब अनंतसुख प्रगट होता है, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन प्रगट होता है तब साथ में अनन्तवीर्य भी प्रगट होता

है। वीर्य अर्थात् आत्मबल। ऐसा आत्मबल प्रगट होता है कि अनंतसुख को प्रतिसमय भोगते हैं। वह स्वभाव होने से और अनन्तवीर्य प्रगट हुआ होने से, कषाय का अभाव होने से उन्हें किसी काल में भी थकान लगती नहीं। बल्कि उल्टा उन्हें अतीन्द्रिय आनंद आता है।

अनंतवीर्य द्वारा ऐसी सामर्थ्यको धारण करते हैं और अनंतसुख द्वारा निराकुल परमानंद का अनुभव करते हैं। अनाकुल आनंद को अरिहंत परमात्मा प्रतिसमय अनुभवते हैं। **पुनश्च, जो सर्वथा सर्व राग-द्वेषादि विकार भावोंसे रहित होकर शान्तरसरूप परिणमित हुए हैं; तथा क्षुधा-तृषादि समस्त दोषों से मुक्त होकर**, जिन्हें क्षुधा नहीं है, तृषा नहीं है, जिन्हें भूख नहीं लगती, जिन्हें तृषा नहीं लगती, जिन्हें रोग नहीं है, शोक नहीं है, भय नहीं है ऐसे परमात्मा अरिहंत जिन्हें औदारिक शरीर होता है; उन अरिहंत के शरीर को देखने पर जीव को सात भव दिखते हैं। भूतकाल के तीन, भावी के तीन और वर्तमान का एक भव। ऐसा निर्मल स्फटिकमणि जैसा उनका परम औदारिक शरीर होता है। देखनेवाले को अपने सात भव दिखते हैं।

क्षुधा-तृषादि समस्त दोषों से मुक्त होकर देवाधिदेवपनेको, जब देव को भूख नहीं लगती तो अरिहंत जो देवों के देव उन्हें भूख और तृषा, रोग और शोक बिल्कुल हो सकते नहीं। **देवाधिदेवपनेको प्राप्त हुए हैं**। देवों के भी देव हैं। उनके समवशरण में ऊपर से स्वर्ग के देव आते हैं, देवियाँ आती हैं, इंद्र आते हैं, चक्रवर्ती भी उनकी सभा में आते हैं और उनको नमस्कार करते हैं। **आयुध-अंबरादिक व अंगविकारादिक जो काम-क्रोधादि निंद्यभावोंके चिह्न उनसे रहित जिनका परम औदारिक शरीर हुआ है**। जैसे दूसरे लोग कल्पना से परमात्मा को कल्पते हैं और किसी के तो बाण और तीर और तलवार और गदा ऐसे चिह्न जो होते हैं, उन अरिहंत भगवान के किसी भी प्रकार के ऐसे आयुध उनके शरीर पर होते ही नहीं। और **अंबरादिक** - कपड़ा भी उनके शरीर पर होता नहीं। **व अंगविकारादिक** उनके शरीर के (अंग विकार रहित होते हैं)। इतनी अधिक पुण्य प्रकृति है कि शरीर भी कोई बेडोल बिल्कुल नहीं होता। अंदर ऐसी पुण्य की प्रकृति के कारण शरीर भी साम्य-साम्य, उनके शरीर को देखने से भी आत्मा को वैराग्य उत्पन्न होता है, वीतरागभाव प्रगट होता है ऐसी उनकी साम्यमूर्ति, परमौदारिक शरीर होता है। **काम-क्रोधादि निंद्यभावोंके चिह्न उनसे रहित जिनका परम औदारिक शरीर हुआ है**। इस शरीर को औदारिक कहते हैं और अरिहंत भगवान के शरीर को परमौदारिक (शरीर कहते हैं)। पहले ऐसा शरीर होता है परन्तु जैसे ही अरिहंत होते हैं तो स्फटिक जैसी काया हो जाती है। उन्हें कोई मल, मूत्र होता नहीं, भूख-दुःख होता नहीं, कोई पसीना होता नहीं, उनकी आँख झपकती नहीं बिल्कुल। ऐसा स्थिर उनका शरीर होता है।

जिनके वचनोंसे लोकमें धर्मतीर्थ प्रवर्तता है। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा गणधर भगवंत वाणी को झेलते हैं और तीर्थ की प्रवृत्ति हो जाती है। जिससे तिरा जाये उसे तीर्थ कहने में आता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के जो वीतरागी परिणाम प्रगट होते हैं उन्हें परमात्मा तीर्थ कहते हैं। ये व्यवहार तीर्थ नहीं, व्यवहार तीर्थ तो बाह्य के हैं। अंदर के अंतरंग में आत्मा के आश्रय से वे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम प्रगट होते हैं जिससे आत्मा तिरता है, संसाररूपी समुद्र को पार करके अल्पकाल में मुक्ति को प्राप्त करता है। तो जिससे तिरा जाता है उसे तीर्थ कहने में आता है।

लोकमें धर्मतीर्थ प्रवर्तता है, जिसके द्वारा अन्य जीवोंका कल्याण होता है। उनकी वाणी द्वारा अन्य जीवों का कल्याण होता है। **जिनके लौकिक जीवों को प्रभुत्व माननेके कारणरूप अनेक अतिशय और नाना प्रकारके वैभवका संयुक्तपना पाया जाता है**। उनकी बाह्य में पुण्य प्रकृति ऐसी होती है कि अन्य जीवों का मान (उन्हें) देखते ही गल जाता है। भामण्डल होता है इत्यादि अनेक प्रकार का बाहर से देखने पर उनका वैभव होता है। पाँच हजार धनुष तो वे ऊँचे होते हैं। और वहाँ उनकी सभा लगती है। और जीव उनकी सभा में जाने पर, जैसे ये लिफ्ट में ऊपर जाते हैं उसीप्रकार देव उसकी रचना करते हैं। ऐसी देवों की रचना से जीवों की सभा भर जाती है।

नानाप्रकारके वैभव का संयुक्तपना पाया जाता है, तथा जिनका अपने हितके अर्थ गणधर-इन्द्रादिक उत्तम जीव सेवन करते हैं। इंद्र और गणधर जैसे धर्मात्मा भी जिनका सेवन करते हैं, जिनका बहुमान करते हैं, वंदन करते हैं, नमस्कार करते हैं, उन्हें पूजते हैं। **ऐसे सर्वप्रकारसे पूजने योग्य श्री अरिहंतदेव हैं उन्हें हमारा नमस्कार हो। अब, सिद्धों का स्वरूप ध्याते हैं**। ये देव-गुरु-शास्त्र उनका स्वरूप हम पहले ले लेते हैं। और फिर तत्त्व की बात हम करेंगे। इससे भलीभाँति उसे ख्याल में आ सकेगा।

सिद्धोंका स्वरूप

जो गृहस्थ-अवस्थाको त्यागकर, मुनिधर्म साधन द्वारा चार घातिकर्मोंका नाश होने पर अनंतचतुष्टय स्वभाव प्रगट करके, कुछ काल पीछे चार अघातिकर्मोंके भी भस्म होने पर परम औदारिक शरीरको भी छोड़कर उर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान हुए। लोक के अग्रभाग पर वे अशरीरी परमात्मा (विराजमान) होते हैं। रजकण खिर जाते हैं। जैसे कपूर होता है और एकदम उसके रजकण खिर जाते हैं, ऐसे यह शरीर पूरा बिखर जाता है और अकेला अरूपी आनंद का कंद वह आत्मा अंतिम देह प्रमाण (किन्तु) थोड़ा न्यून, वे सिद्धगति में परमात्मा विराजमान होते हैं।

ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान हुए, वहाँ जिनको समस्त परद्रव्योंका संबंध छूटनेसे मुक्त अवस्थाकी सिद्धि हुई, चरम शरीरसे किंचित् न्यून थोड़ा कम **पुरुषाकारवत् आत्मप्रदेशोंका आकार अवस्थित हुआ**। अंतिम शरीर हमेशा अरिहंत भगवान का पुरुष का ही होता है, स्त्री का नहीं होता। पुरुष का शरीर होता है साधना में और अरिहंत होते हैं वे पुरुष ही होते हैं। स्त्री नहीं हो सकती। और वे अरिहंत होकर सिद्ध परमात्मा होते हैं।

अतः **पुरुषाकारवत् आत्माप्रदेशोंका आकार अवस्थित हुआ, प्रतिपक्षी कर्मोंका नाश हुआ, इसलिए समस्त सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शनादिक आत्मिक गुण सम्पूर्णतया अपने स्वभावको प्राप्त हुए हैं, तथा जिनके नोकर्मका संबंध दूर हुआ** नोकर्म अर्थात् शरीर का संबंध छूट जाने से **इसलिए समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मिक धर्म प्रगट हुए हैं, तथा जिनके भावकर्मका अभाव हुआ** अर्थात् राग-द्वेष-मोह, क्रोध-मान-माया-लोभ तमाम प्रकार के कषायभाव - भावकर्म उनका नाश होने से **निराकुल आनंदमय** अनाकुल आनंदमय **शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो रहा है; तथा जिनके**

ध्यान द्वारा भव्य जीवोंको, सिद्ध परमात्मा का जो जीव ध्यान करते हैं उन्हें **स्वद्रव्य-परद्रव्यका और औपाधिकभाव और स्वभावभावों का विज्ञान होता है**।

आत्मा स्वद्रव्य है, देहादि परद्रव्य हैं, राग-द्वेष-मोह औपाधिक भाव हैं, ज्ञान-दर्शन-चारित्र के परिणाम स्वाभाविक भाव हैं -- ऐसा उनका विज्ञान अर्थात् भेदविज्ञान होता है, विशेष ज्ञान होता है। स्व और पर का विभाग करके स्व का अवलंबन (होना), और पर का अवलंबन छूट जाना, उसे मोक्षमार्ग कहने में आता है। **इसलिए साधने योग्य जो अपना शुद्धस्वरूप उसे दर्शानेको प्रतिबिम्ब समान हैं तथा जो कृतकृत्य हुए हैं**। सिद्ध परमात्मा को अब कुछ भी करना बाकी नहीं है। पूर्ण वीतराग दशा को, सिद्ध दशा को (प्राप्त) हो गये हैं। उन्हें कोई साधना बाकी नहीं है। साधना पूरी हो गई और कृत्य-कृत्य हो गये हैं। करने का था वह सब हो गया। **इसलिए ऐसे ही अनंतकाल पर्यन्त रहते हैं। ऐसे निष्पन्न हुए सिद्धभगवानको हमारा नमस्कार हो।**

आचार्य-उपाध्याय-साधुका सामान्य स्वरूप

अब, आचार्य-उपाध्याय- साधुके स्वरूपका अवलोकन करते हैं:- आचार्य-उपाध्याय-साधुका सामान्य स्वरूप ऐसा शीर्षक है। **जो वैरागी होकर, समस्त परिग्रहका त्याग करके शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके अंतरंगमें तो उस शुद्धोपयोग द्वारा अपनेको आपरूप अनुभव करते हैं**। देखो आचार्य, उपाध्याय और साधु के स्वरूप के संबंध में जीव की भूल रह जाती है। वह भूल इसमें टूटे ऐसा वर्णन है। कि **जो विरागी होकर** अर्थात् राग के प्रति भी जिन्हें वैराग्य है और जगत के प्रति भी जिन्हें वैराग्य प्रगट हो गया है आत्मा के आश्रय से। तो विरागी बनकर **समस्त परिग्रहका त्याग करके** अभ्यन्तर और बाह्य सभी प्रकार के परिग्रह को छोड़कर। चौदह प्रकारके परिग्रह अभ्यंतर और दस प्रकार के परिग्रह बाहर हैं। धन, धान्य, दास, दासी बाहर के परिग्रह हैं स्त्री, कुटुंब आदि और चौदह प्रकार के परिग्रह अंदर में रहे हुए हैं मिथ्यात्व और कषाय आदि के जो भाव।

वह परिग्रह छोड़कर **शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके** यह साधु का लक्षण। आचार्य, उपाध्याय और साधु का लक्षण क्या है? जो लक्षण आत्मभूत लक्षण है। देह की बाह्य नग्नता वह अनात्मभूत लक्षण है, वह व्यवहार लक्षण है। पाँच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प वे भी अनात्मभूत लक्षण हैं। वे भी संयोग हैं। वे भी छूट जाते हैं। और अंतरंग में शुद्धोपयोग। एक अशुभ उपयोग, एक शुभ उपयोग और एक शुद्धोपयोग, तीन प्रकार के उपयोग होते हैं। प्रथम अशुभ उपयोग विशेष होता है। फिर छठ्ठे, सातवें गुणस्थान में आने पर अशुभ उपयोग छूट जाता है। छठ्ठे में शुभ उपयोग होता है। सातवें में शुद्धोपयोग होता है।

और मुनिराज चौबीस घंटे में एक बार आहार लेते हैं। और पानी भी एक बार लेते हैं। चाहे जैसी गर्मी हो तो भी दूसरी बार मुनिराज पानी का एक बिंदु भी लेते नहीं। और दिन में तो उन्हें नींद होती नहीं है। रात्रि के पिछले प्रहर में एक करवट में पौने सेकंड की नींद होती है। पौने सेकंड की नींद के पश्चात् तुरंत निर्विकल्प शुद्धोपयोग ध्यान आता है। वापस पौने सेकंड की नींद होती है। ऐसे क्षण में प्रमत्त और क्षण में अप्रमत्त ऐसी अपूर्व मुनिराज की दशा है। **ऐसे मुनिवर देखे वन में, जाके राग-द्वेष नहीं मन में** (जिनेन्द्र अर्चना, पृ. ३२९) ऐसी उनकी मुनिराज की स्थिति होती है।

शुद्धोपयोगरूप निर्विकल्पध्यान में क्षण में विकल्प क्षण में निर्विकल्प शुद्धोपयोग की भूमिका। नित्य आनंद का भोजन करनेवाले, अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करते हैं मुनिराज। क्योंकि तीन कषाय का अभाव है। तीन कषाय के अभावपूर्वक जितनी वीतराग दशा प्रगट हुई है उतना अतीन्द्रिय आनंद, नित्य आनंद का भोजन करते हैं। उस आनंद के भोजन में ही इतने लीन होते हैं कि कभी-कभी तो इतनी आत्मा की मस्ती चढ़ जाती है कि दो दिन हो जायें, चार दिन हो जायें, आठ दिन हो जायें, (तथापि) भूख की इच्छा नहीं होती।

इच्छा का निरोध उसका नाम तप उसका नाम उपवास है। सहजपने इतनी अधिक आनंद की मग्नता आ जाती है। जैसे हम एक दृष्टांत दें। हमारे देश में तो ऐसा होता है, यहाँ का तो कुछ पता नहीं है, लेकिन सीज़न हो शादी का, कपड़े की दुकान हो और घर पास में हो। तो उस कपड़े के व्यापारी को एक बज जायें, दो बज जायें, तीन बज जायें, चार बज जायें, ग्राहक इतने सारे हों तो उसे भोजन की भूख ही नहीं लगती उसे। तो बालक भोजन के लिए बुलाये कि पापा चलो भोजन करने, समय हो गया। (तो पापा कहते हैं कि) मुझे भूख नहीं लगी, मुझे भूख नहीं लगी। क्योंकि उसकी रुचि, कमाने में पड़ी है न इसलिए भूख होने पर भी भूख को भूल जाता है। ऐसा यह... तो दृष्टांत।

इस तरह मुनिराज को शुद्धात्मा में लीनता, एकाग्रता इतनी बढ़ती है और इतना आनंद आता है कि तृप्त-तृप्त हो जाते हैं। तृप्त-तृप्त आनंद के भोजन में भूख की इच्छा मर जाती है। क्योंकि आहार लेकर भी तथा प्रकार की तृप्ति करनी थी न, तथा प्रकार की, क्षुधा की। तो यहाँ इतनी ज्यादा आनंद की मस्ती में लीन हो गये हैं कि जहाँ आहार की, पानी की इच्छा नहीं होती। एक दिन बीते, दो दिन बीतें, चार दिन बीतें, आठ-आठ दिन बीत जायें, कुछ पता नहीं चलता, उसमें (आनंद में) जरा, सहज, थोड़ी कमी आये तो फिर इच्छा होती है कि चलो आहार लेने जायें। वह भी उनकी सहज दशा है। कोई साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। साधु हुआ तो सिद्ध हुआ। साधु की दशा कोई अलौकिक है। जैन के साधु की दशा कोई अपूर्व है।

शास्त्रकार तो ऐसा कहते हैं कि साधु वे तो चलते-फिरते सिद्ध हैं। चलते-फिरते सिद्ध हैं। क्योंकि उन्हें अल्पकाल में सिद्ध दशा प्रगट होनेवाली है। **शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके - अंतरंगमें तो उस शुद्धोपयोग द्वारा अपनेको आपरूप अनुभव करते हैं**। शुद्धोपयोग द्वारा अपने शुद्धात्मा का अनुभव करते हैं। अनुभव करते हैं अर्थात् शुद्धात्मा का अनुसरण करके अनुभव करना। 'अनु' अर्थात् आत्मा का अनुसरण करके 'भवन' अर्थात् परिणमना। आत्मा का अवलंबन लेकर निरंतर जो आत्मा का अनुभव करते हैं, अनुसरण करके परिणमते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप - वीतरागभावरूप परिणमते हैं, **अनुभव करते हैं**।

परद्रव्यमें अहंबुद्धि धारण नहीं करते। देहादि में 'यह देह मेरी है' - ऐसी अहंबुद्धि धारण नहीं करते। पाँच महाव्रत का विकल्प उठता है - शुभभाव, परन्तु 'यह शुभभाव मेरा है' - इसप्रकार उसमें अहंबुद्धि धारण नहीं करते। आस्रव में अहंबुद्धि नहीं है। जिसे जीवतत्त्व में अहंबुद्धि हुई, शुद्धात्मा में अहंबुद्धि हुई उसे देहादि या पाँच महाव्रत के विकल्प में अहंबुद्धि नहीं है। कुटुंब परिवार तो उसके हैं ही नहीं। अतः उसमें अहंबुद्धि होने का तो प्रश्न ही नहीं है। वे तो गृहस्थ अवस्था का त्याग

करके जंगल में गिरिगुफा में जहाँ बाघ और सिंह फिरते हों ऐसे स्थल में वे ध्यान में मग्न होते हैं। १२० डिग्री का ताप हो तो पत्थर के ऊपर जाकर तप तपते हैं। और ऐसी शीत कड़कड़ाती ठंड हो तो नदी किनारे जाकर ध्यान में मग्न होते हैं। जहाँ विशेष ठंड हो वहाँ जाकर ध्यान करते हैं।

परद्रव्य में अहंबुद्धि धारण नहीं करते। एक रजकण भी मेरा है ऐसा स्वप्न में भी उन्हें आता नहीं है। **अपने ज्ञानादिक स्वभावको ही अपना मानते हैं**। अपने ज्ञान और दर्शन ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव उसे ही अपना मानते हैं। **परभावोंमें ममत्व नहीं करते**। जो कोई विकल्प उठते हैं, प्रमत्त अवस्था होती है उसमें बिल्कुल ममत्व नहीं करते। अपने परिणाम में ममता नहीं होती, तो देह में तो ममता कहाँ से हो? देह में ममता नहीं होती। सिंह फाड़कर खाये, बाघ फाड़कर खाये, ध्यान में अडोल, मेरू डिगे तो वे डिगें। मेरू डिगे तो मुनिराज डिगें।

परभावोंमें ममत्व नहीं करते, तथा जो परद्रव्य व उनके स्वभाव ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं उन्हें जानते तो हैं, परद्रव्य देहादि और यह सब जंगल उनके ज्ञान में प्रतिभासित होता है-जानने में तो आता है और **व उनके स्वभाव** अर्थात् पुद्गल के स्वभाव ज्ञान में जानने में आते तो हैं, ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं। पाँच महाव्रत के परिणाम भी ज्ञान में ज्ञात होते हैं, परन्तु ज्ञान में आते नहीं हैं। जिसप्रकार देह ज्ञात होती है भिन्नपने ऐसे राग भी भिन्नपने ज्ञात होता है। एकत्वबुद्धि नहीं होती। **जानते तो हैं परन्तु इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें राग-द्वेष नहीं करते**। आहाहा! कोई पदार्थ उनके ज्ञान में जानने में आ जाये तो यह पदार्थ ठीक और यह अठीक, ठीक के प्रति राग और अठीक के प्रति द्वेष ऐसा द्वंद्व जिनको नष्ट हो गया है।

रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सबमें भासे पुद्गल एक स्वभाव जब। (अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा) श्रीमद् ने कहा कि रजकण हो या वैमानिक की रिद्धि हो हमें तो सब पुद्गल लगता है, हमें कोई अंतर लगता नहीं। ऐसी ज्ञानियों की - धर्मात्माओं की अंतरंग स्थिति होती है। **परन्तु इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें राग-द्वेष नहीं करते; शरीरकी अनेक अवस्थाएँ होती हैं**। शरीर में कोई फेरफार हो, रोग हो, होता है। **बाह्य नाना निमित्त बनते हैं**। बाह्य अनेक प्रकार के निमित्त बाघ, भेड़िया भी आ जाये निमित्त बन जाये परन्तु **वहाँ कुछ भी सुख-दुःख नहीं मानते; तथा अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसी बनती हैं, वैसे बनती हैं, खींचकर उनको नहीं करते**। बाह्य में देहादि की चाहे जैसी क्रिया होती हो परन्तु उसे खींचतान करके कर्ताबुद्धि से नहीं करते। सहज होने योग्य होता है, जो स्थिति भजती है उसे जानते हैं।

अपने उपयोगको बहुत नहीं भ्रमाते हैं। क्या कहा? कि जो वर्तमान चलता उपयोग अर्थात् ज्ञान का व्यापार है उसे ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, ज्ञेय से ज्ञेयान्तर, इसप्रकार उपयोग को चारों ओर नहीं भ्रमाते। एक ज्ञेय को जानें, उसे छोड़ें और दूसरे ज्ञेय का ग्रहण करें, फिर तीसरे ज्ञेय का ग्रहण करें इसप्रकार निरंतर अपने उपयोग को बाहर ज्ञेय को जानने में नहीं भ्रमाते। क्योंकि विषय और कषाय दोनों के ऊपर जिन्होंने विजय प्राप्त की है। विषय अर्थात् परपदार्थ को जानने की अभिलाषा। परपदार्थ को जानने की इच्छा उन्हें मृतप्रायः हो गई है। क्योंकि परपदार्थ को जानने से आत्मा को ज्ञान भी नहीं होता और सुख भी नहीं होता। मात्र अपने शुद्धात्मा को जानने से

अपने को ज्ञान भी होता है और सुख भी होता है। ऐसा जिन्होंने अनुभव में ले लिया है इसलिए परपदार्थ को जानने की इच्छा मर गई है। परपदार्थ को जानने से सुख होता ही नहीं और आत्मा को जानने से सुख होता है। अतः परपदार्थ को जानने की अभिलाषा उन्हें नहीं होती, अतः वे उपयोग को नहीं भ्रमाते।

उदासीन होकर निश्चलवृत्तिको धारण करते हैं। ज्ञाता-दृष्टा भाव से जान लेते हैं, किन्तु ये राग और द्वेष उसको उत्पन्न होता नहीं। **कदाचित् मंदरागके उदयसे शुभोपयोग भी होता है**। उन्हें पाँच महाव्रत के विकल्प शुभभाव, शुभोपयोग भी होता है। **उससे जो शुद्धोपयोगके बाह्य साधन हैं उनमें अनुराग करते हैं, परन्तु उस रागभावको हेय जानकर दूर करना चाहते हैं**। आहाहा! ये पुण्य के परिणाम उन्हें भी दूर करना चाहते हैं। वह शुभभाव आया तो ठीक, रहे तो ठीक, परम्परा से मोक्ष का कारण है ऐसा बिल्कुल स्वप्न में भी मानते नहीं हैं।

रागभाव को हेय जानकर दूर करना चाहते हैं। शास्त्र के वांचन के समय जो विकल्प उठता है शुभभाव, या भगवान के दर्शन का विकल्प उठता है, उस शुभभाव को भी स्वभाव का अवलंबन लेकर टालना चाहते हैं। शुभभाव आता तो है परन्तु शुभभाव की भावना नहीं है। शुद्धात्मा की भावना होती है मुनिराज को। बड़ा अंतर। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप में भी बड़ा अंतर है। **परन्तु उस रागभावको हेय जानकर दूर करना चाहते हैं; तथा तीव्र कषायके उदयका अभाव होनेसे हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तो अस्तित्व ही नहीं रहा है**। हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह या कुशील ऐसे भाव तो उन्हें स्वप्न में भी नहीं आते, उनका तो त्याग ही वर्तता है। पाप के परिणाम तो उनके पास (भी) नहीं फटकते।

ऐसी अंतरंग (अवस्था) होने पर बाह्य दिगंबर सौम्यमुद्राधारी हुए हैं, शरीर का सँवारना आदि विक्रियाओंसे वे रहित हुए हैं, वनखण्डादिमें वास करते हैं, वन जंगल में रहते हैं। गिरिगुफा में रहते हैं। **अट्ठाईस मूलगुणोंका अखण्डित**, अट्ठाईस मूलगुण के नाम हैं। **पाँच महाव्रत, पाँच समिति, इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक, केशलोंच, अस्नान, नग्नता, अदंतधोवन,** दातुन नहीं करते, **भूमिशयन** मात्र भूमि पर सोते हैं। कोई गद्दा या रजाई या कुछ बिछाने का नहीं होता। नग्न होते हैं और जमीन पर सोते हैं, **भूमिशयन**। **स्थितिभोजन** एक बार खड़े-खड़े आहार करते हैं। **और एक बार आहार ग्रहण -ये अट्ठाईस मूलगुण** साधु के होते हैं।

ऐसा **अखंडित पालन करते हैं, बाईस परिषहोंको सहन करते हैं, बारह प्रकारके तपोंको आदरते हैं**। **बाईस परिषहोंको सहन करते हैं**। **क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, डंसमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श, मल, नग्नता, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना, सत्कार-पुरस्कार, अलाभ, अदर्शन, प्रज्ञा और अज्ञान -इन बाईस प्रकार के परिषह** को जो जीतते हैं।

बारह प्रकारके तपोंको आदरते हैं। तप की व्याख्या:- **अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्तशय्यासन एवं कायक्लेश -ये छह प्रकार के बाह्य तप तथा प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान - ये छह प्रकार के अंतरंग तप मिलाकर बारह प्रकार के तप हैं।**

कदाचित् ध्यानमुद्रा धारण करके प्रतिमावत् निश्चल होते हैं, कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रियाओंमें प्रवर्तते हैं। कदाचित् एकदम ध्यान में मग्न हो जाते हैं। कभी शास्त्र का अध्ययन करते हैं। **कदाचित् मुनिधर्मके सहकारी शरीरकी स्थितिके हेतु योग्य आहार-विहारादि क्रियाओंमें सावधान होते हैं। ऐसे जो जैन मुनि हैं उन सबकी ऐसी ही अवस्था होती है।** अब आचार्य का स्वरूप, उपाध्याय और साधु का विशेष स्वरूप। यह general (सामान्य) स्वरूप कहा।

आचार्यका स्वरूप

उनमें जो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रकी अधितकतासे प्रधान पद प्राप्त करके संघमें नायक हुए हैं; मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही मग्न है और जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीव-याचक उनको देखकर राग अंशके उदयसे करुणाबुद्धि हो तो उनको धर्मोपदेश आचार्य भगवंत **देते हैं, जो दीक्षाग्राहक हैं उनको दीक्षा देते हैं, जो अपने दोषोंको प्रगट करते हैं, उनको प्रायश्चित्त विधि से शुद्ध करते हैं। ऐसे आचरण अचराने-अचरानेवाले आचार्य उनको हमारा नमस्कार हो।**

उपाध्यायका स्वरूप

उपाध्याय का स्वरूप:- तथा जो बहुत जैन-शास्त्रोंके ज्ञाता होकर संघमें पठन-पाठन के अधिकारी हुए हैं; जो समस्त शास्त्रोंका प्रयोजनभूत अर्थ जान एकाग्र हो अपने स्वरूपको ध्याते हैं, और यदि कदाचित् कषाय अंशके उदयसे वहाँ उपयोग स्थिर न रहे तो उन शास्त्रोंको स्वयं पढ़ते हैं तथा अन्य धर्मबुद्धियों को पढ़ाते हैं। ऐसे समीपवर्ती भव्योंको अध्ययन करानेवाले श्री उपाध्याय, उनको हमारा नमस्कार हो।

साधुका स्वरूप

साधु का स्वरूप:- इन दो पदवी धारकोंके बिना अन्य समस्त जो मुनिपदके धारक हैं तथा जो आत्मस्वभावको साधते हैं; देखो! साधु की व्याख्या। जो अपने शुद्धात्मा के स्वभाव को निरंतर साधते हैं, साधना करते हैं उन्हें साधु कहने में आता है। **अपना उपयोग परद्रव्यमें इष्ट-अनिष्टपना मानकर फँसे नहीं व भागे नहीं वैसे उपयोग को साधते हैं, और बाह्यमें उनके साधनभूत तपश्चरणादि क्रियाओं में प्रवर्तते हैं तथा कदाचित् भक्ति-वंदनादि कार्योंमें प्रवर्तते हैं। ऐसे आत्मस्वभावके साधक साधु हैं, उनको हमारा नमस्कार हो।**

इस प्रकार सच्चे देव-गुरु-शास्त्र उनका श्रद्धान करके और उनका ज्ञान करके और हमने यह एक मंगलाचरण किया। अब जो साधु होकर, अरिहंत होकर सिद्ध परमात्मदशा प्राप्त करते हैं ऐसे प्रथम अनादिकाल के अज्ञानी जीव, मिथ्यादृष्टि जीव, प्रथम गृहस्थ अवस्था में सम्यग्दर्शन प्रगट करते हैं। मिथ्यात्व का नाश करते हैं और सम्यग्दर्शन प्रगट करते हैं। यह सम्यग्दर्शन धर्म का मुख्य पहला सोपान है, मूल है।

जिसप्रकार वृक्ष है उसका मूल होता है तो वह वृक्ष होता है, डालियाँ होती हैं, पत्ते होते हैं, फल-फूल होते हैं। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन है वह धर्म का मूल है। **दंसणमूलो धम्मो** (अष्टपाहुड, दर्शनपाहुड गाथा २) धर्म का मूल तो सम्यग्दर्शन है। और धर्म है वह चारित्र है। वे मोह, क्षोभ रहित आत्मा के

परिणाम उन्हें चारित्र दशा कहने में आता है। दो स्टेज हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन और पश्चात् चारित्र होता है। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही चारित्र होता है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है उसे चारित्र तीनकाल में नहीं होता। तो प्रथम में प्रथम गृहस्थ अवस्था में करने योग्य, गृहस्थ अवस्था में हो सकने योग्य, स्वयं अपना जीवन-कार्य वर्तमान में जिस प्रकार चलाता हो व्यापार रोजगार, खाना-पीना इत्यादि उस प्रकार नीतिमय जिनका जीवन हो, ऐसे जीवों को प्रथम सम्यदर्शन प्रकट करने का प्रत्येक आचार्यों ने उपदेश दिया है। यहाँ तक कहा है कि-यह पंचमकाल है, कलिकाल है, बलहीन हो, चारित्र अंगीकार करने की तेरी शक्ति न हो तो तू सम्यग्दर्शन तो प्राप्त करना, करना और करना ही।

सम्यग्दर्शन गृहस्थ अवस्था में प्राप्त हो सकता है। अर्थात् मोह, राग और द्वेष; उसमें मोह है वह मिथ्यात्व है, उसका अभाव हो सकता है और राग-द्वेष रह जाते हैं। गृहस्थ अवस्था में जीव राग-द्वेष से बिल्कुल रहित नहीं हो सकता। परन्तु मोह से रहित, मिथ्यात्व से रहित जरूर हो सकता है। उसे आत्मा का भान हो सकता है। उसके लिये उपाय ज्ञानियों ने ऐसा सुंदर बताया है ... जैनदर्शन में जन्मते साथ ही उसे णमोकार मंत्र तो मिला। उसके माता-पिता ने विरासत में णमोकारमंत्र तो सबको दिया परन्तु जब तक ज्ञानी का जन्म नहीं होता अथवा ज्ञानी का योग नहीं होता तब तक भेदविज्ञान का मंत्र नहीं मिलता।

ऐसे में पूज्य गुरुदेव का जन्म उमराला में हुआ। पूर्व के संस्कारी जीव थे। महाविदेह क्षेत्र में थे। महाविदेहक्षेत्र से सीधे यहाँ पधारे। वास्तव में तो हमारे लिये ही उनका जन्म हुआ हो ऐसा हमें भासित होता है। उन्होंने भेदविज्ञान का मंत्र दिया। यह भेदविज्ञान का मंत्र शास्त्रों में तो था। दो हजार वर्ष पहले लिखे हुए समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि शास्त्र उन सभी में भेदविज्ञान का मंत्र तो था। यह भेदविज्ञान का मंत्र है वह वीतराग-विज्ञान है। भौतिक-विज्ञान अलग है और वीतरागी विज्ञान अलग प्रकार का है। अपने को भौतिक विज्ञान का कोई काम नहीं है, प्रयोजन नहीं है। अपने को वीतराग-विज्ञान का प्रयोजन है कि जिसके द्वारा अंशतः वीतराग दशा प्रगट होने पर उसे वर्तमान में एकदेश दुःख का अभाव होकर और एकदेश आनंद का स्वाद, उसे आत्मिक सुख का स्वाद आता है, ऐसी एक अपूर्व दशा सम्यग्दर्शन में होती है वह भेदविज्ञान से होती है। अब भेदविज्ञान अर्थात् क्या? भेदज्ञान दो के बीच में होता है। भेदज्ञान एक में नहीं होता। भेदज्ञान दो पदार्थों के बीच होता है। जिसप्रकार देह और आत्मा भिन्न-भिन्न होने पर भी देह और आत्मा को एक मानना (वह एकताबुद्धि है)। उस देह और आत्मा को भिन्न-भिन्न जानना और भिन्न-भिन्न मानना और भिन्न मानने पर देह होने पर भी देह के प्रति ममता छूट जाये, मोह छूट जाये उसका नाम भेदविज्ञान है।

कि ज्ञानमय आत्मा है उसे देह का भले संयोग हो परंतु देह है वह आत्मा नहीं है और आत्मा है वह देह नहीं है। जैसे तलवार म्यान में होने पर भी तलवार भिन्न और म्यान भिन्न है, ऐसे देह भिन्न है और आत्मा अंदर चैतन्यमय आत्मा, अखंडानंद आत्मा जाननहार-देखनहार स्वभाव से भरा हुआ आत्मा अंदर में भिन्न है, देह भिन्न है। उन दोनों के बीच का भेदज्ञान करके और उन दोनों के बीच की एकताबुद्धि थी (वह) तोड़नी और आत्मा का अनुभव करना उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है। परपदार्थ के साथ तो आत्मा को कोई संबंध या लेना-देना नहीं है। जिसे ऐसा भासित होता हो कि यह

कुटुंब परिवार मेरा है, बंगला मेरा है, पैसा मेरा है, वह तो परपदार्थ में ममता करता हो, वह तो धर्म से बहुत दूर है। वह तो पहले में पहले उनके प्रति ममता तो छोड़नी पड़ेगी। ममता छूटती है, राग नहीं छूटता। यह एक मार्मिक बात है। राग रह जाता है कुटुंब के प्रति। परन्तु यह कुटुंब मेरा है ऐसी ममताबुद्धि छूट जाती है। क्योंकि जहाँ आत्मा में आत्मबुद्धि हुई वहाँ पर में आत्मबुद्धि छूट जाती है।

ऐसे भेदज्ञान से आत्मा का अनुभव होता है और मोह का नाश होता है। यह एक प्रकार के भेदज्ञान की स्थूल बात की। अब भेदज्ञान का एक दूसरा प्रकार। वो स्थूल से अब सूक्ष्म बात है। कि आठ प्रकार के कर्म का आत्मा को बंध हुआ है अनादिकाल से - यह व्यवहारनय का कथन है। उसके स्वभाव की दृष्टि से देखने में आये तो आत्मा आठ प्रकार के कर्म के बंध के अभाववाला वर्तमान में है। यह बात पहले की अपेक्षा थोड़ी ज्यादा सूक्ष्म दिखती है। क्योंकि देह तो चला जाता है, जला देते हैं, जीव अन्य जगह चला जाता है। अतः देह और आत्मा भिन्न हैं - यह तो ख्याल में उसे आ सकता है। परन्तु आठ प्रकार के कर्म का संयोग संबंध है, आत्मा के साथ तादात्म्य संबंध नहीं है। जिसप्रकार शक्कर और मिठास का तादात्म्य संबंध है, ऐसे आठ कर्म का और आत्मा का तादात्म्य संबंध नहीं है, मात्र संयोग संबंध है। वह संयोग संबंध भी स्वभाव दृष्टि से देखने में आये तो उन आठ प्रकार के कर्म के बंध से भिन्न, अबद्ध स्वभाव मुक्त आत्मा तीनों काल रहा हुआ है। ऐसे आठ प्रकार के कर्म का लक्ष छोड़कर, उन आठ कर्म के बंधन का लक्ष छोड़कर, मुक्त ऐसा चिदानंद आत्मा अंदर विराजमान है उसका लक्ष करने पर आत्मा को आत्मा का अनुभव होता है। दो प्रकार कहे।

तीसरा प्रकार। स्थूल, फिर सूक्ष्म, फिर सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम ऐसे धीरे-धीरे अंदर में आत्मा के स्वरूप तक कैसे पहुँचा जाये और आत्मा के दर्शन कैसे हों यह उसकी बात है। आत्मदर्शन कहो या सम्यग्दर्शन कहो।

एक बार अभी राजकोट में एक भाई ने प्रश्न किया, कि पूज्य गुरुदेव इस शुद्धात्मा की इतनी अधिक प्रशंसा करते हैं, इतनी-इतनी महिमा गाते हैं शुद्धात्मा की तो वह शुद्धात्मा चौबीस घंटे करता क्या होगा? ऐसा एक प्रश्न हुआ। वेलजीभाई! ऐसा एक प्रश्न अपने रतिभाई घीया ने किया। कि इस आत्मा की इतनी सारी प्रशंसा और गाने गाये जाते हैं तो वह चौबीस घंटे आत्मा करता क्या है? ऐसा प्रश्न हुआ। उसका उत्तर दिया, कि वह दर्शन देने का काम करता है। परंतु किसको? कि जो दर्शन ले उसको।

क्या समझ में आया? झवेरचंदभाई! कि यह भगवान जो आत्मा अंदर में जलहल ज्योति विराजमान है। देहदेवल में तथापि देह से भिन्न, आठ कर्म से भिन्न और भावकर्म से - रागादि से भिन्न - पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न अंदर में, और ज्ञान और आनंद से अभिन्न ऐसा जो परमात्मा, अंदर परमात्मा विराजमान है। हम बालक को कहते हैं कि भगवान के दर्शन करो तो धर्म होता है। बात एकदम सच्ची है। भगवान के दर्शन तुम करो तो धर्म होता है यह बात एकदम सच्ची है। परन्तु कौनसे भगवान के दर्शन करने से धर्म होता है और कौनसे भगवान के दर्शन करने से शुभभाव होता है? आहाहा! इतना भेद पता नहीं है। तो यह आत्मा है वह चौबीस घंटे क्या करता है? कि जो दर्शन लेने जाये उसे (दर्शन) देता है। उसे ना नहीं करता। जैसे मंदिर हो उसमें महावीर भगवान की प्रतिमा

विराजमान हो और रास्ते पर चलते अनेक व्यक्ति मंदिर के पास से चले जाते हों, तो भगवान - प्रतिमाजी किसी को बुलाती नहीं कि मेरे दर्शन करने आओ। किसी को बुलाती नहीं। और मंदिर में जो जाये और दर्शन ले उसे मना करती नहीं। बाहर चले जाते हों उनको बुलाती नहीं और अंदर में जाकर जो भगवान के दर्शन करते हैं उन्हें दर्शन दिये बिना रहती नहीं। परन्तु दर्शन लेने जाये उसे दे ना? मोहनभाई!

ऐसे ही यह प्रभु भगवान आत्मा अंदर विराजमान है। आहाहा! कैसे बैठे उसको? यह भगवान अंदर विराजमान है। तो ऐसा प्रश्न होता है कि इतना बड़ा भगवान आत्मा मेरे पास (अंदर) विराजमान है तो मुझे क्यों दिखता नहीं? (क्यों) कि तू देखता नहीं। प्रश्न तो होता है ना, कि भगवान आत्मा अंदर विराजमान है तो मुझे क्यों दिखता नहीं? कि तू देखता नहीं। और जो देखता है वह निहाल हो जाता है। उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होकर, चारित्र आकर मोक्ष प्रगट हो जाता है।

मुमुक्षु:- आप हमें देखने की कला बताओ।

उत्तर:- वह भेदज्ञान की कला जो गुरुदेव के पास से मैं सीखा हूँ और उन गुरुदेव का ही माल मैं यहाँ delivery (वितरण) करने आया हूँ। उनका ही माल यहाँ delivery करने आया हूँ।

इस लंदन में कोई जिज्ञासु जीव हों और उसके ग्राहक हों, माल दिखाना, उन्हें पसंद आये तो ले लेवें। और कदाचित् आज न लें तो जांगड़ (वापस देने की शर्तवाला) दिया जाता है, यदि अच्छा लगे तो रख लेना और अच्छा न लगे तो माल वापस कल दे देना। तो भी कोई बात नहीं। कोई बलात्कार नहीं है। यहाँ किसी के ऊपर बलात्कार नहीं है कि हम कहते हैं वह तुम मानो, मानो और मानो; ऐसा कोई किसी के ऊपर बलात्कार नहीं है। धर्म उसका नाम कि जिसमें बलात्कार नहीं होता। धर्मी जीव धर्म का स्वरूप समझाते हैं, कहते हैं, शास्त्रों में लिखते हैं। जिसकी योग्यता होती है वह ग्रहण करता है। और योग्यता न हो और ग्रहण न करे तो भी उसके ऊपर करुणा करते हैं; कि अभी उसकी योग्यता पकी नहीं है ना, वह भी भगवान है, कल समझेगा। आज नहीं समझा तो कल समझेगा। ऐसा उनका बड़ा मन होता है। न समझे उसके ऊपर द्वेष नहीं और समझे उसके ऊपर राग नहीं। समझे उसके प्रति राग नहीं और न समझे उसके प्रति द्वेष नहीं उसका नाम मध्यस्थता, उसका नाम वीतरागी दशा कहने में आता है।

तो उस शुद्धात्मा की उपलब्धि अनंतकाल से एक समयमात्र भी जीव को नहीं हुई। शुद्धात्मा का स्वानुभव नहीं हुआ, शुद्धात्मा को स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जिसने प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं लिया, ऐसे शुद्धात्मा के स्वरूप को एक बार यदि अंतर्मुख होकर जीव स्वानुभव के द्वारा जान ले तो अल्पकाल में उसे मुक्ति हो, हो और हो ही। यह संदेश जो गुरुदेव का था वही संदेश यहाँ कहने में आता है। कि भेदज्ञान से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु:- हम भी यहाँ प्रेमपूर्वक आपकी वही बात सुनने आये हैं।

उत्तर:- सही है! बहुत अच्छी बात है, सुनने जैसा यह है, करने जैसा यह है। जो अनंतकाल से नहीं किया वह करने जैसा है। अन्यथा पाप तो अनंतबार किये और नरक, निगोद में गया और पुण्य के परिणाम भी अनंतबार किये और देवगति में गया और दुःखी हुआ। पुण्य करे तो भी दुःखी और पाप

करे तो भी दुःखी। पाप का फल दुःख और पुण्य का फल भी दुःख, यह सर्वज्ञ भगवान के सिवाय कोई कहता नहीं है।

मुमुक्षुः- किसी को ऐसा लगता है कि नरक में तो दुःख होता है परन्तु देव में भी दुःख है?

उत्तरः- दुःख ही है। जहाँ आत्मा का भान नहीं है वहाँ तो ज्यादा अग्नि लगती है कि मुझे ऋद्धि कम और उस देव को ऋद्धि ज्यादा है। वह देव हुक्म करे कि हाथी हो जा तो हाथी हो जाना पड़ता है। वहाँ order (हुक्म) मानना पड़ता है। वहाँ व्यवस्था है उस प्रकार की। स्वर्ग में तो सुख होगा ना? अरे भाई! धूल में भी सुख नहीं है। सुख तो आत्मा में है। आहाहा! वहाँ (स्वर्ग में) सुख कैसा?

मुमुक्षुः- शास्त्र में महिमा बहुत करते हैं ना, अर्थात् स्वर्ग में सुख बहुत होगा।

उत्तरः- वे मूर्ख करते हैं। अज्ञानी, मूर्ख, मूढ़ हैं ना, जिन्हें आत्मा का भान नहीं है और आत्मा के सुख का स्वाद जिन्होंने लिया नहीं है, वे स्वर्ग के सुख की प्रशंसा करते हैं। और जिसने आत्मा का आनंद नहीं लिया वह अन्य पैसेवालों को सुखी मानता है परन्तु (वे) महा दुःखी हैं। कहीं उसमें पैसे में सुख नहीं है। वैसे ही पैसे में दुःख भी नहीं है। पैसे की ममता (होती है) वह दुःख का कारण, पैसे होने पर भी निर्ममत्वभाव से परिणम जाये तो वह आत्मा सुखी है। भले पैसा हो। उसमें पैसा कहाँ बाधक होता है धर्म करने में? धर्म करने में क्या बाधक होता है? कि पैसा मेरा, ऐसी ममता बाधक होती है। पैसा बाधक नहीं होता, संयोग बाधक नहीं होते। कुटुंब-कबीला बाधक नहीं होता। परन्तु 'यह मेरा' ऐसे जो मोह और ममता करता है वह उसे धर्म करने में बाधक है। उसका घातकभाव है। संयोग वहीं के वहीं रहते हैं। चक्रवर्ती है, छह खंड का राज्य है, छियानवे हजार तो स्त्री हैं। इतनी सेना है, इतना वैभव पुण्य का है परन्तु अंदर में ... सोलहवें शांतिनाथ भगवान चक्रवर्ती पद में थे। तीर्थंकर होनेवाले थे वह पता था उन्हें। कामदेव भी थे। चक्रवर्ती भी थे और कामदेव भी थे और तीर्थंकर भी होनेवाले थे। तथापि राज्य में बैठे होने पर भी उनका आत्मा में आसन था। इतने उदास-उदास अंतर से थे। बाहर से नहीं दिखाई देता। वह उदासीनता की अंदर श्रद्धापूर्वक की परिणति चलती है। तो उसमें कहीं मेरेपने का भाव नहीं आता। तो ऐसा प्रश्न होता है कि यदि उदासीनता थी तो क्यों जल्दी दीक्षा अंगीकार नहीं करते?

अरे भाई! तुझे पता नहीं है। प्रत्येक पदार्थ सत्, अहेतुक, स्वयमेव अपने स्वअवसर पर परिणम रहा है। उस परिणाम को कोई बदले या कोई करे ऐसी कर्ताबुद्धि ज्ञानी को नहीं होती। ज्ञानी तो अपने परिणाम को और पर के परिणाम को जानता हुआ परिणमता है। ज्ञानी साधक तो अपने परिणाम को और पर के परिणाम को जानता हुआ परिणमता है परन्तु वह करता बिल्कुल नहीं है। अतः करने न करने का प्रश्न तो मूल में जैनदर्शन में है ही नहीं। और जिसे करना और छोड़ना और लाना और त्यागना ऐसी बुद्धि पर्याय में और पर्याय के विषय में जाती है, वह- ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है, ज्ञायक होने से केवल ज्ञाता है, उस ज्ञाता स्वभाव को चूककर और स्वयं कर्ता बनता है। तो कर्ता बनना वह ही मूल अज्ञान की जड़ है और ज्ञाता होना उसमें ही मोक्ष का मूल रहा हुआ है। समय हो गया।